''बौद्धकालीन भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन: एक समीक्षा''

डॉ. संजय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
दीनदयाल उपाध्याय केन्द्र
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश

प्राचीन भारतीय इतिहास में 600 ई.पू. से लेकर 300 ई.पू. का समय बौद्धकाल कहलाता है। कुछ विद्धान इस काल को द्वितीय शहरीकरण के पुनरुत्थान का काल या प्राग्यमौर्य काल भी कहना पसंद करते हैं। इस काल के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, जिसके लिए गौतम बुद्ध की शिक्षाओं को काफी हद तक उत्तरदायी थी। छठी शताब्दी ई.पू. गौतम बुद्ध ने जो आध्यात्मिक विचार दिए, उससे मनुष्य की सामाजिक-परिस्थितियों के साथ-साथ आर्थिक विचारों एवं कार्यप्रणाली में भी परिवर्तन आया। समकालीन दौर में सामाजिक समरसता एवं आर्थिक प्रगति के साथ-साथ वैश्विक शांति सभी की आधारशीला बौद्ध दर्शन ही था। प्राचीन दार्शनिक विचारों में वर्तमान की भाँति वैज्ञानिकता भले ही न प्रलक्षित हो, किन्तु हमें तत्कालीन विषम सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में उसकी उपयोगिता का मूल्यांकन अवश्य ही करना चाहिए। क्योंकि अतीत ही वर्तमान को जन्म देता है। अग्रलिखित लघुशोध ''बौद्धकालीन भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन-एक समीक्षा'' में वर्तमान सामाजिक-आर्थिक प्रगति हेतु बौद्ध दर्शन की उपयोगिता का मूल्यांकन किया जाऐगा।

मूल शब्द: बौद्धदर्शन, सामाजिक-आर्थिक, वर्तमान, मूल्यांकन, परिवर्तन

परिचय

600 ई.पू. आध्यात्मिक जागृति एवं वैचारिक क्रान्ति के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। इसी समय यूनान में पाइथागोरस, सुकरात एवं अफलातून, चीन में कन्फ्यूशियन, ईरान में जरथुस्त्र और भारत में महावीर एवं गौतम बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। इन सभी विचारकों ने अपने-अपने भू-प्रदेशों की जनता में नई आध्यात्मिक चेतना को बढ़ाने का सफल प्रयास किया। परन्तु इनमें से गौतम बुद्ध का सन्देश केवल भारतभूमि तक सीमित न रहकर चीन, जापान, श्रीलंका, कम्बोडिया, वियतनाम, म्यांमार, लाओस तथा थाइलैण्ड आदि देशों में भी फैला। ...गौतम बुद्ध (सिद्धार्थ) का जन्म 563 ईसा पूर्व लुम्बिनी (नेपाल) में हुआ था। परन्तु भारत उनकी कर्म-भूमि थी। बचपन में एक बूढ़े व्यक्ति, एक बीमार व्यक्ति, एक मृत शरीर और एक तपस्वी को देखकर गौतम बुद्ध को सांसारिक सुख के खोखलेपन का एहसास हो गया। अपने पुत्र राहुल के जन्म के बाद, उन्होंने उन्नतीस वर्ष की आयु में सत्य की खोज में घर छोड़ दिया। छः वर्ष तक वह एक तपस्वी के रूप में सत्य की खोज में भटकते रहे। अंततः वे उरूवेला (निरंजना नदी के तट पर बोधगया के पास) गए और निरंजना नदी की धारा में स्नान करने के बाद एक पीपल के पेड़ (बोधि वृक्ष) के नीचे ध्यान लगाकर बैठ गए। यहाँ उन्होंने अपने निरन्तर ध्यान के 49वें दिन 35 वर्ष की आयु में सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद गौतम बुद्ध ने वर्णव्यवस्था, यज्ञीय हिंसा, कर्मकाण्ड, जातिवाद का विरोध एवम् तत्कालीन समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों की भर्त्सना किया। जिसके कारण समाज में त्रस्त मानव जाति को बौद्ध धर्म के रूप में एक नई औषधि मिली। यह नई औषधि सामाजिक समरसता को बढ़ाकर सम्पूर्ण विश्व को अखण्ड राष्ट्र बनाने में सक्षम थी। यह सब प्रकार से शांति को समर्थन करती थी। 'अहिंसा' एवं 'शांति' का मूलमंत्र आर्थिक विकास हेतु काफी उपयोगी सिद्ध हुआ। जिसका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित व्याख्यान में किया जाएगा।

बौद्धकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन

गौतम बुद्ध के जन्म से पूर्व भारतीय समाज की प्रकृति का अवलोकन करने से हमें ज्ञात होता है कि समाज में परम्परागत चारों वर्णों में कठोरता और जातिगत भेद-भाव काफी बढ़ गया था। इस संदर्भ में ब्राह्मण एवं पालि साहित्यों में 'द्विजाति' एवं 'एकजाति' का वर्णन मिलता है। प्रथम उच्च वर्णों- ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को 'द्विजाति' माना जाता था, जिनकों उपनयन तथा शिक्षा का अधिकार था। वहीं 'एकजाति' में शूद्रों एवं अछूतों की गणना की जाती थी, जिनके स्पर्श मात्र से उच्च जातियों के लोग अपवित्र हो सकते थे। इन एकजाति को उपनयन तथा शिक्षा का अधिकार नहीं था, इसी कारण समाज में इनकी स्थिति दयनीय होती जा रही थी, वहीं दूसरी तरफ ब्राह्मण वर्ण अपनी जन्मजात श्रेष्ठता का दावा कर रहा था। कर्म के आधार वर्णों के निर्धारण की वैदिक परंपरा में कठोरता आ गई थी। वर्णों के आधार पर व्यक्ति की जाति के निर्धारण के स्थान पर 'जन्म' द्वारा जाति का निर्धारण होने लगा था। कुल मिलाकर उपरोक्त कारणों से सामाजिक जड़ता को बढ़ावा मिल रहा था।

तत्पश्चात् गौतम बुद्ध ने ऐसे सिद्धान्त दिए जो निश्चित रूप से ब्राह्मणवादी परम्परा की तुलना में ब्राह्मणवादी परंपरा की तुलना में सामाजिक रूप से अधिक समावेशी थे। क्योंकि बुद्ध ने सभी सामाजिक संबंधों को बेड़ियों और दुःख (पीड़ा) के रूप में देखा और इन बंधनों को तोड़कर व्यक्ति के मोक्ष का मार्ग बताया। बौद्ध संघ के निर्माण के पीछे भी यही मंशा थी, कि लोग सामाजिक जड़ता से बाहर निकल कर मठों में जीवन-यापन करें। कुल मिलाकर उनके सिद्धान्त में महान सामाजिक उथल-पुथल के लिए ही थे। बौद्ध सिद्धान्तों से उजागर होता है कि बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था को एक मानव-निर्मित आदेश माना अर्थात् वर्ण-व्यवस्था के दैवीय प्रकृति को स्वीकार नहीं किया। इसका एक उपयुक्त उदाहरण 'संयुक्त निकाय' में मिलता है। 'संयुक्त निकाय' में, 'कथानुसार जब एक ब्राह्मण सुंदरिका द्वारा

उनकी उत्पत्ति के बारे में पूदा गया, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, 'मूल' (जाति) के बाद में मत पूछो, व्यवहार के बारे में पूछो। जिस प्रकार किसी भी लकड़ी से अग्नि उत्पन्न हो सकती है, उसी प्रकार निम्न पद के कुल में सन्त का जन्म हो सकता है।'' अर्थात् कोई व्यक्ति जन्म से नहीं, बल्कि कर्म से ब्राह्मण बनता है। इन्होंने बुद्ध मानव जाति की समानता के पोषक थे। उनके अनुसार शील एव प्रज्ञायुक्त मनुष्य ही ब्राह्मण है। इसी आधार पर गौतम बुद्ध ने स्वयं को भी ब्राह्मण कहते थे। उन्होंने उच्च या निम्न वर्ण में जन्म को अक्सर पिछले जन्मों में किए गए कार्यों के परिणाम के रूप में बताया जाता था, लेकिन बुद्ध ने सभी को निर्माण के योग्य माना और अपने भिक्खुओं को यह सन्देश दिया कि वह सभी से भोजन स्वीकार करे, चाहे वे किसी भी वर्ण या जाति के हो।

बुद्ध समकालीन सामाजिक प्रथाओं के लिए जानबूझकर उपेक्षा का सुझाव देते हैं, ताकि समाज के रूढ़िवादिता एवं अन्धविश्वासों में कमी आए। स्वयं गौतम बुद्ध ने भिक्खुओं के भोजन स्वीकार करने के बारे में कोई निषेध नहीं लगाया। एकतरफ उन्होंने अमीर गृहपति और सेठों का निमंत्रण स्वीकार किया वहीं दूसरी तरफ उन्होंने सामाजिक पदानुक्रम में निम्न श्रेणी माने जाने वाले लोगों के साथ भी भोजन किया। बुद्ध ने अंतिम भोजन चुड़ा नाम के एक लोहार के घर किया।

बौद्ध संघ में प्रवज्ञा ग्रहण करने हेतु भी वर्ण और जाति को अप्रासंगिक माना जाता था। बुद्ध के अनुसार जब कोई व्यक्ति संघ में शामिल होता है, तो वह बिना वर्ण का हो जाता है। इस सन्दर्भ में अंगुत्तर निकाय में बुद्ध के एक स्वप्न का वर्णन है, जिसमें विभिन्न वर्णों (प्रकार, रंग) के चार पक्षी चार दिशाओं से आए और उनके चरणों में बैठे। इसी तरह चार वर्णों के भिक्खु बुद्ध के शरण में आकरण वर्णविहीन हो जाते हैं। स्वयं बुद्ध के प्रतिष्ठित शिष्य उपाली मूल रूप से शाक्यों के नाई थे। सरिपुत्र, महामोगगलन और महाकस्प ब्राह्मण वर्ण से थे।

इसके अलावा बौद्ध ग्रन्थों से हमें स्त्रियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा पतनशील मिलती है। स्त्रियों का उपनयन संस्कार को बन्द कर दिया गया था जिसके कारण उनकी सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति काफी खराब हो चुकी थी। वर्ण एवं जाति के अलावा बुद्ध ने कुछ संकोच के बाद समाज में स्त्रियों के प्रति जो रूढ़िवादियां बढ़ी रही थी, उसे भी कम किया। गौतम बुद्ध ने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य-निर्माण प्राप्ति हेतु स्त्रियों को योग्य माना एवम् एक भिक्खुनी संघ का निर्माण किया। भिक्खुनी संघ के नियम मूल रूप से भिक्खुओं के समान ही थे। स्त्रियों ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया, वह बड़ी संख्या में बौद्ध संघ में सम्मिलित हुई, अपना पूरा जीवन बुद्ध के विनय के अनुसार व्यतीत किया और अंततः उनमें कई अपने उच्च ज्ञान के लिए जानी जाती है। इससे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव आया।

इस प्रकार गौतम बुद्ध सामाजिक सुधार हेतु व्यावहारिक आवश्यकता को अपनाने पर जोर दिया। उन्होंने समकालीन मानव जाति की समस्याओं को पहचाना और व्यावहारिक नैतिक आचार-संहिता जो सभी को आसानी से स्वीकार्य थी, उसके माध्यम से उन समस्याओं का निदान किया। अंततः बौद्ध दर्शन की सुसंगत आचार संहिता ने बौद्धकालीन समाज के लोगों में समरसता स्थापित कर समकालीन समाज की प्रगति में बाधक जड़ता को समाप्त करने का सफल प्रयास किया। वास्तव में गौतम बुद्ध ने अपने आकर्षित व्यक्तित्व के माध्यम से सामाजिक विकास के साथ-साथ सामाजिक ढाँचे में भी परिवर्तन कर दिया। इसी परिवर्तन से हमें बौद्धकालीन दौर में एक सभ्य समाज का स्वरूप देखने को मिलता है, जिसकी आवश्यकता हमें आज भी है।

बौद्धकालीन भारत में आर्थिक परिवर्तन के कारण

गौतम बुद्ध अपने साथ-साथ बौद्धकालीन लोगों के विचारों में परिवर्तन लाए। जिससे मानव में चेतना जागृत हुई। इस चेतना से

सामाजिक परिस्थतियों में परिवर्तन के साथ-साथ आर्थिक सिद्धान्त एवं क्रियाशीलता में भी सकारात्मक परिवर्तन आया। बौद्धकाल में उत्तर भारत में नये-नये सामाजिक-आर्थिक वर्गों के उदय के प्रमाण मिलता है। समाज के रूढ़िवादी स्वरूप के अलावा आर्थिक विकास हेतु कुछ अनिवार्य आवश्यकता को बौद्ध धर्म के उदय का कारण माना जाता है।

बौद्धकालीन भारत में पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तरी-दक्षिणी बिहार के क्षेत्रों के साथ-साथ उत्तर भारत के कई जगहों पर लगभग 100 सेमी. से अधिक वर्षा होती थी। लगभग 600 ई.पू. इस क्षेत्र में लोहे के औजारों के प्रयोग से घने जंगलों को साफ करके मनुष्य ने निवास हेतु बड़ी बस्तियां एवं कृषि योग्य भूमि का विस्तार किया। इसी समय कृषि हेतु भूमि की जुताई हेतु लोहे का हल प्रयोग किया जाने लगा, और यह कार्य पशुबल के बिना शीघ्र नहीं किया जा सकता था, जबकि बलि स्वरूप अंधाधुंध मवेशियों को मारने की वैदिक प्रथा नई कृषि की प्रगति में बाधक बन रही थी। इसलिए कृषि से जुड़े सामाजिक समूहों ने बौद्ध सम्प्रदाय को अपने नेतृत्व के सार्थक माना। इसी अवधि में उत्तरी भारत में बड़ी संख्या में शहरों का उदय हुआ, इससे कौशाम्बी, कुशीनगर, बनारास, वैशाली, राजगरी आदि उल्लेखनीय थे। इन शहरों में कई शिल्पकार एवं व्यापारी वर्ग का विकास देखने को मिलता है।

वाणिज्य हेतु सिक्कों के प्रचलन से समाज में वैश्यों की समृद्धि में बढ़ोत्तरी हुई। परन्तु प्रचलित ब्राह्मणवादी समाज में वैश्य की स्थिति ब्राह्मण और क्षत्रियों से निम्न थी। इसलिए वैश्य वर्ग भी नए धर्म की तलाश में थे। नए धार्मिक सम्प्रदायों (बौद्ध एवं जैन) के उदय ने उनकी तलाश को समाप्त कर दिया।

एक अन्य समस्या ब्राह्मणवादी धर्मसूत्रों में था कि वे ब्याज पर पैसा उधार देने की निंदा की गई थी। ब्याज लेकर वाणिज्य-व्यापार करने वालों की निंदा की गई थी। बढ़ते व्यापार वाणिज्य को बढ़ावा देने एवं

अपनी सामाजिक स्थिति को सुधारने हेतु उत्सुक थे। गौतम बुद्ध ने उनका उदार हृदय से समर्थन किया। फलस्वरूप बौद्ध धर्म और वैश्यों के साथ-साथ सम्पूर्ण भारत में आर्थिक समृद्धि बढ़ी। जिसका उल्लेख में बौद्ध ग्रंथ मुख्यतम जातकों से सामान्य रूप से मिल जाता है।

बौद्ध त्रिपिटक एवं जातक में आर्थिक समृद्धि का स्वरूप

परम्परागत अर्थशास्त्र के विपरीत बौद्ध दर्शन भौतिक विकास के बजाय अध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर लोगों की खुशहाली बढ़ाने में विश्वास रखता है। जहाँ आधुनिक भौतिकवादी वस्तुओं के संग्रह में लगा रहता है, वहीं बौद्ध मोक्ष में रूचि रखते हैं। लेकिन बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग में विश्वास रखते हैं, इसलिए, इनकी भौतिक कल्याण से कोई शत्रुता नहीं है। सम्पत्ति नहीं, बल्कि सम्पत्ति के प्रति गहरा लगाव मोक्ष के मार्ग में बाधा बनता है। इस तरह सादगी एवं अहिंसा जो बौद्ध अर्थशास्त्र के मुख्य सिद्धान्त थे उनका सकारात्मक प्रभाव बौद्धकालीन आर्थिक क्षेत्र में भी देखने को मिलता है, जो अग्रलिखित पंक्तियों द्वारा स्पष्ट होता है।

बौद्धकालीन राज्य की आर्थिक व्यवस्था

एक सम्पन्न एवं सुखद राज्य हेतु एक सुनियोजित आर्थिक व्यवस्था अनिवार्य आवश्यकता होती है। अर्थात् राज्य एवं आर्थिक व्यवस्था एक-दूसरे के परिपूरक होते हैं। बौद्ध सिद्धान्त एकाधिकार, पूँजी संचयन एवं अत्यधिक लाभ का समर्थन नहीं करते हैं। परन्तु राज्य के सन्दर्भ इस सिद्धान्त की अनदेखी की जा सकती है क्योंकि बौद्ध दर्शन राज्य से अधिक-अधिक कल्याण की उम्मीद करता है।

जातक कथाओं में आय, उत्पादन पर कर, शुल्क तथा चुंगी आदि का विवरण मिलता है। बौद्धकालीन दौर रचित सूत्र साहित्यों में ऐसा ही विवरण मिलता है। एक स्थान पर सामाजिक करों को लगाने का उल्लेख मिलता है। गौतम सूत्र में राजा को प्रजा के द्वारा मिलने वाली भेंट,

श्रमिक, कलाकार, शिल्पकार आदि का पर्याप्त विवरण दिया गया है। बौद्ध जातकों एवं त्रिपिटकों के आधार पर भी राज्य की आय के निम्नलिखित स्रोतों का वर्णन मिलता है।

(क) कृषि उत्पादन का कुछ भाग राजा को कर के रूप में प्रदान किया जाता था। उत्पादन में राजा को लगभग 1/6 था। उत्पादन के मापक के रूप में ''द्रोणमापक'' का प्रयोग किया जाता था।

(ख) वस्तुओं के आयात-निर्यात पर भी कर लगाया जाता था।

(ग) शराब एवं अन्य नशीली वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर भी राज्य कर लगाता था।

(घ) राजा को उपहार या भेंट में प्राप्त होने वाली वस्तुऐं एवं संपति भी राज्य के आय का हिस्सा था।

बौद्धकालीन धन वैभव

बौद्धकालीन आर्थिक समृद्धि का पता जातक कहानियों से चलता है। यह कहानियाँ मुख्यतः व्यवसायों से जुड़ी हुई है। उच्च वर्ग के लोग सोने-चाँदी का प्रयोग करके एक विलासित जीवन व्यतीत करते थे, उस तरह के उल्लेख से उस समय की समाज कितना समृद्धिशाली उसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। जातक कथाओं में सम्पत्ति का उपभोग करने से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ उपलब्ध है। धार्मिक कार्यों हेतु धन का उपयोग करना, भिक्षुओं को बाँटने हेतु धन का उपयोग आदि का सामान्य उल्लेख मिलते हैं।

इसके अलावा जातकों में 'धन' लिप्सा का भी विवरण मिलता है। कई कहानियाँ ऐसी है, जिसमें व्यक्ति द्वारा धन का लोभ किया जाना, और अंततः उसका बुरा परिणाम व्यक्ति को भुगताना पड़ा। सुवर्ण हंस जातक की कथा अनुसार ''सुवर्ण हंस द्वारा सोना दिये जाने से धनी स्त्री, धन से संतुष्ट नहीं हो सकी और अन्त में उस सुवर्ण हंस का ही वध कर दिया।'' स्पष्ट है कि बौद्धकालीन भारतीय समाज में दो तरह के लोग थे, एक

अपना धन धर्मकार्य में लगाकर पुण्य पा रहे थे एवं दूसरे धन संचय हेतु पाप कर रहे थे।

बौद्धकालीन उद्योग एवं उत्पादित वस्तुओं का विवरण

जातक कथाओं में विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विवरण प्राप्त होता है, बुनाई, स्वर्णकार, धातुकार, बढ़ईगिरी, बर्तन बनाने कुम्हार आदि अनेक प्रकार के उद्योगों का प्रचलन था। इन उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए संघों का भी उल्लेख मिलता है। उद्योगों के स्थानीयकरण पर विशेष ध्यान रखा जाता था। कच्चे माल की सुगम आवागमन को ध्यान में रखकर उद्योगों की स्थापना की जाती थी । चीन-पट्ट, कम्बल, मलमल के वस्त्र आदि भी उद्योग सम्पन्न अवस्था में थे।

सेट्ठि वणिज जातक कथा से हमें सूचना मिलती है कि बौद्धकाल में स्थानी उत्पादों को बड़े-बड़े शहरों में भेजा जाता था, वहाँ के थोक विक्रेता इन वस्तुओं एवं कस्बों तक पहुंचाते थे। उत्पादित वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण वर्तमान की भाँति माँग और पूर्ति के आधार पर किया जाता था। इस प्रकार वाणिज्य के साथ व्यापार की बौद्धकाल में विकसित हो चुका था। कृषक, श्रमिक, छोटे व्यवसायी, कलाकार एवं श्रेणी वर्ग सभी पुण्य वस्तुओं का उत्पादन एवं विनिमय करके व्यापार वाणिज्य में सहयोग प्रदान करते थे। बुद्धकाल में उद्योग एवं अन्य व्यवसाय प्रायः आनुवांशिक ही होते थे। पुत्र अधिकतर अपने पिता के उद्योग एवं व्यवसाय को ही अपने जीवन व्यापन का माध्यम बनाकर उसे आगे बढ़ाते थे। परंतु इस संदर्भ में वर्ण-व्यवस्था के अपवाद भी देखने को मिलता है। जातक कथाओं से पता चलता है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ण के लोग भी वर्णेत्तर व्यवसाय अपना रहे थे। ब्राह्मणों को कृषि, पशुपालन, बढ़ई एवं जुलाहे आदि व्यवसाय अपनाने का भी वर्णन मिलता है। मुख्यतः शाक्य तथा कोलिय क्षत्रियों को कृषि करते वर्णित किया गया है। निःसंदेह यह बहुत सकारात्मक परिवर्तन था।

बौद्धकालीन व्यापार की समृद्धि

बौद्धकालीन दौर में व्यापारिक क्षेत्र भी काफी समृद्ध हो गया था। जहाँ आरंभिक पालि ग्रन्थों में 'निगम' शब्द का वर्णन मिलता है, जिसका अर्थ, 'बाहर जाने का स्थान' था। इससे व्यापार की गतिशीलता का ज्ञान होता है। 'निगम' शब्द का प्रयोग शिल्पियों एवं व्यापारियों के संघों के लिए भी किया जाता है। दीघनिकाय में नगरक, महानगर, राजधानी आदि ऐसे ही केन्द्र के रूप में वर्णित है। बौद्धकाल में विभिन्न व्यावसायिकों के अपने-अपने संगठन बन गये जिन्हें श्रेणी कहा जाता था। धर्मसूत्रों के साथ-साथ जातक ग्रंथों में भी श्रेणियों का वर्णन मिलता है। 'श्रेणी' एक ही प्रकार के व्यवसाय या उद्योग करने वाले लोगों की संस्था होती थी। व्यापारियों के श्रेणी के प्रधान को 'सार्थवाह' कहा जाता था।

विदेशी व्यापार, क्षेत्रीय स्थानीय व्यापार, शहरों एवं गांवों के मध्य व्यापार अच्छे तरह प्रचलन में थे। विभिन्न देशों से व्यापार करने वाले व्यापारी एक समूह (कारक) बनाकर व्यापार करते थे। इससे उन्हें मार्ग में डाकुओं एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा मिलती थी। महावग्ग जातक, सांख्य जातक एवं गन्धार जातक में व्यापार से सम्बन्धित नियमों का विवरण दिया गया है। रिज डेविस के अनुसार व्यापार हेतु स्थल एवं जल दोनों मार्गों का प्रयोग किया जाता था। अर्थात् व्यापारिक दृष्टि से यातायात के साधनों का उचित प्रबंध था। परन्तु इसके साथ व्यापार के दौरान मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का विवरण भी जातकों को मिलता है। कई बार व्यापारियों नावें टूट जाती थी, तो कई अपरिचित स्त्रियों का धूत द्वारा व्यापार ठगे जाते थे।

बौद्धकालीन मूल्य निर्धारण एवं विनियम

बौद्धकाल में आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने मूल का निर्धारण का कर्त्तव्य माना जाता था। जातकों के अनुसार राजा किसी भी वस्तु को क्रय करने के लिये एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करता था, जिसे

'अंगरखा' कहा जाता था। **'अंगरखा'** ही विभिन्न वस्तुओं का बिक्री करों को निर्धारित करता था। इसके अलावा यह अधिकारी वस्तुओं की गुणवत्ता हेतु 'लेबी' भी प्रदान करता था। जहाँ तक बौद्धकाल विनियम माध्यम का प्रश्न है, तो इस समय प्राचीन वस्तु-विनियम पद्धति लुप्त हो गई थी। राइज डेविड्स के अनुसार सोने के सिक्के का प्रचलन इस समय नहीं हुआ था। किन्तु तांबे एवं कर्षषण के सिक्कों को विनियम के माध्यम के रूप में प्रयोग प्रचलन में आ गया था।

बौद्धकालीन श्रमिक एवं दास

जातक कथाओं के अनुसार अलग-अलग कार्यों में लगे श्रमिकों को सामान्यतः 'कर्मकार' ही कहा जाता था। ये श्रमिक कर्मकार स्वयं अपनी मजदूरी तय करने हेतु स्वतंत्र थे, केवल विवाद की स्थिति में किसी विशेष व्यक्ति द्वारा किसी कार्य की मजदूरी तय होती थी। जातकों में दैनिक, मासिक एवं वार्षिक वेतन पर मजदूरी करने वाले श्रमिकों का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार राज्य अपनी आवश्यकता अनुसार स्थाई श्रमिक भी रखते थे। जिसमें हथवाला, घुड़सवार, रथकार, शास्त्रकार, रसोईया, नाई, अन्नानागार का नौकर, मालाकार, धोबी, बर्तन बनाने वाले, लेखाकार आदि राज्य में स्थायी श्रमिक थे। इसके अलावा कुछ श्रमिक जनता की सेवा हेतु राज्य द्वारा नियुक्त किए जाते थे, जिसमें बढ़ई, धातुकार, जुलाहे, चर्मकार, कुम्हार, नाई, मालाकार, टोकरी बनाने वाले आदि प्रमुख थे।

बौद्धकाल अस्वतन्त्र श्रमिकों को दास कहा जाता था। राजाओं एवम् सम्पन्न लोगों के घरों में 'दास' के रूप में लोग कार्य करते थे। इस समय किसी दासी से उत्पन्न पुत्र एवं पुत्री को दास ही कहा जाता था। बौद्ध साहित्य में इनका सामान्य नाम परिचारक एवं परिचारिका मिलता है। परन्तु इसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था, जैसे कि गौतम बुद्ध ने बताया था। कुर्ग जातक में दास एवं उसकी दास बालिका के साथ

परिवार के सदस्य जैसा व्यवहार किया जाता था। दास अपने मालिक के प्रति पूर्णरूप से निष्ठावान होते थे। दास मालिक अपने कई महत्वपूर्ण कार्य उनके भरोसे छोड़कर चले जाते थे। बौद्ध ग्रन्थों में दासों को किसी वर्ण या जाति से सम्बन्धित नहीं किया गया है। साथ ही इस समय दासमुक्ति का नियम प्रचलित था।

बौद्धकालीन भारत एक सामाजिक समरसता एवं आर्थिक समृद्धि का युग था। गौतम बुद्ध के विचारों न केवल धर्म की समयानुकूल व्याख्या बल्कि समाज को एक प्रमुख अंग मानकर, उसके माध्यम से आर्थिक विचारों को नई दिशा दिया। केवल बौद्धग्रन्थ ही नहीं बल्कि पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' जैसे ग्रन्थों ने भी गौतम बुद्ध के विचारों से जो सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन उसको रेखांकित किया है। इस काल में कृषि के साथ अन्य वाणिज्यिक उत्पादों में भी बढ़ोतरी हुई, जिसका व्यापार होने लगा, इस व्यापार हेतु नियमों का आगमन हुआ। यही नियम आगे चलकर स्मृति ग्रन्थों के आधार भी बने।

आधुनिक समय की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं में जब करते हैं तो हमारे समुख मुख्यतः मूल्य, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, बड़े पैमान पर उत्पादन, सट्आ, एकाधिकार, बेरोजगारी तथा श्रमिकों का शोषण आदि समस्याएँ आती हैं। इन सभी समस्याओं पर प्राचीन समय के हमारे ऋषि-मुनियों एवं धर्म प्रवर्तकों ने भी गहरा चिंतन किया था। जिसमें एक सुखी, सम्पन्न क्रियाशील, प्रगतिशील मानव समाज की परिकल्पना थी। आज भी ये चिंतन तत्कालीन उत्पादन, विवरण, विनिमय प्रणाली पर आधारित सामाजिक-आर्थिक जीवन मूल आधार हो सकती है, किन्तु हमने अपने परम्परागत सामाजिक-आर्थिक चिंतकों के विचारों को वित कुछ वर्षों में अवहेलना करके, पाश्चात्य अनुकरण में लग गये हैं जो हमारे देश के दोषपूर्ण, अव्यवहारिक एवं असामाजिक साबित हो रही है। कुल मिलाकर हमने अपने सामाजिक-आर्थिक विकास की आधारभूत पथ को छोड़कर

समृद्धि की परिकलपना कर रहे हैं। वर्तमान विभिन्न सामाजिक- आर्थिक समस्याऐं इसी की देन है।

आज वर्तमान सामाजिक असमानता का मुख्य कारण संपत्ति का नया रूप है, जो लोगों की दुख और पीड़ा का कारण है। बौद्धकालीन भारत के सम्पत्ति के संचय को पसंद नहीं करते थे। नए आवास और पोशाक से उनका लगाव कम था, और युद्ध और हिंसा से नफरत करते थे। गौतम बुद्ध के इन विचारों से यदि हम आम लोगों को अवगत करायें, तो यह भी आदिम जीवन प्रणाली में लौटना पसंद करेंगे, जो सम्पत्ति के नए वेदनाकारी स्वरूप और जीवन की भौतिकवादी शैली से दूर ले जाऐगी। गौतम बुद्ध ने सदा शुद्धतम तपस्वी जीवन जीना पसंद किया। अपने अनुयायियों से सोना-चाँदी छूने की अनुमति नहीं दी और उन्हें उतना ही भोजन स्वीकार की आज्ञा दी जितना कि शरीर और आत्मा को साथ रखने के लिए पर्याप्त था।

संदर्भ

1. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (2013) - जातक, प्रथम खण्ड, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ.-566-569
2. . कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (2013) - जातक, द्वितीय खण्ड, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 13
3. श्रीवास्तव, ए. एल. (1989) - भारतीय कला पत्रिका, अनुराग प्रकाशन, पृ. 25
4. बन्धोपाध्याय, एन. सी. (1925) - इकानामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रस इन एंशियेन्ट इंडिया, इंटरनेट आरचिव, कलकत्ता, पृ. 276-277
5. श्रीवास्तव, के.सी. ; द्ध - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, पृ. 189 से 196
6. त्रिपाठी, डॉ. रामनरेश ;1981 द्ध - प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार, बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद (प्रयाग)
7. तिवारी, अरूण कुमार (2016) - 'गौतम बुद्ध, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 9-13
8. ओमप्रकाश प्रसाद एवं प्रशान्त गौरव (2006) - प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, (ई.पू. 1500-500 ई.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 13, 213
9. पाण्डेय, गया (2006) - भारतीय मानवशास्त्र, कान्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 170-175
10. शर्मा, आर. एस., ( ) - भारत के प्राचीन नगरों का पतन

11. बाशम, ए. एल., ( ) - द वंडर दैट वाज इंडिया, पृ. 256-257

12. बन्धोपाध्याय, एन.सी. ( ) - इकॉनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एंशियंट इंडिया,

13. डेविड्स, रिज, ( ) - बुद्धिष्ट इंडिया, पृ. 13-17

14. वीर, श्याम, (2016) - आधुनिक भारत में बौद्ध धर्म का सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक योगदान IJAER, www.educationjournal.org. , page no. 6 to 9

15. सराओ, के.टी.एस., (2004) - 'प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म, उद्भव, स्वरूप एवं पतन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. 144-151

16. Varm, Vishwanath Prasad (2016) – Early Buddhism and Its Origins, chapter-15, 17

17. Pandey, G.C. (2013) – Studies in the Origin of Buddhism, Motila Banarasidass, p. 310

18. Bapat, P.V. (1997) – 2500 Years of Buddhism, Publication Division, Govt. of India, New Delhi. Page